वैदिक व्याख्यान माला — १४ वाँ व्याख्यान

ऋषियोंके राज्यशासनका आदर्श

कलकत्ता निवासी " श्रीमान् शेठ श्री कृष्णलालजी पोद्दार " की ओरसे
प्राप्त २००) दो सौ रुपयोंसे इस व्याख्यानका मुद्रण हुआ है।

लेखक

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

अध्यक्ष- स्वाध्यायमण्डल, साहित्यवाचस्पति, गीतालंकार

स्वाध्याय-मंडल, पारडी (जि. सूरत)

मूल्य छः आने

ॐ

ऋषियोंके राज्यशासनका आदर्श

देवोंका आदर्श

ऋषियोंके जीवनव्यवहारका आदर्श कौनसा था और उनके राज्यशासनका आदर्श कौनसा था, यह मननपूर्वक देखनेयोग्य विषय है; शतपथमें कहा है कि—

यद् देवा अकुर्वन्, तत् करवाणि । श० ब्रा०

'जैसा देव करते हैं वैसा मैं करूंगा।' अर्थात् देवताओंका आचरण यह ऋषियोंके सामने आदर्श था। वेदमंत्रोंमें जो देवोंका वर्णन है, वह देखकर वैसा आचरण करना ऋषियोंको अभीष्ट था। देव किस समय कैसा आचरण करते रहे, यह देखना और स्वयं वैसे प्रसंग आनेपर वैसा आचरण करना यह वैदिक समयकी पद्धति थी। यह ऋषियोंके आचरणका नियम था। अग्नि, इन्द्र, वरुण, सविता आदि देव उनके सामने आदर्श थे। इन देवताओंके वर्णन वेदमंत्रोंमें वे देखते थे और ये देव जैसा आचरण करनेका वर्णन वेदमंत्रोंमें वे देखते थे, वैसा व्यवहार वे करते थे। ऋषियोंका आदर्श देवताओंका आचरण था। यहां ध्यान रखना यह है कि देवोंके आचरणमें यदि त्रुटि रही तो वह आदर्शमें नहीं शामील होती थी अर्थात् देवोंके शुभ गुण ही ऋषियोंके सामने आदर्श रहते थे।

आगे पुराणकालमें 'न देवचरितं चरेत्' ऐसा लोग कहने लगे। इसका कारण यही है कि पुराणोंमें जो देवोंके वर्णन हैं वे मानवोंके लिये सर्वथा आदर्श मानने योग्य नहीं हैं, इसलिये पुराण देखनेवालोंने "देवचरित आचरण करनेयोग्य नहीं है" ऐसा कहा।

यह ऐसा क्यों हुआ यह आज हमें देखनेका प्रयोजन यहां नहीं है। तथा पौराणिक कथाओंमें जो देवताओंके वर्णन हैं, उनकी विचिकित्सा भी हमें आज यहां करनी नहीं है। हमें इतना ही देखना है कि, ऋषियोंके सामने वैदिक देवताओंका आदर्श था, वैदिक ऋषि वैदिक देवताओंके वर्णन अपने सामने आदर्श करके रखते थे और वे ऋषि देवताओंके समान अपना आचरण करते थे। इस कारण उनका राजकारण वैदिक देवताओंके राजकारणके समान होता था, यह हम वैदिक देवताओंके वर्णनसे आज भी जान सकते हैं। यही आज यहां हमें देखना है—

उत्तम शासकका लक्षण

ईशा वास्यं इदं सर्वं यत् किं च जगत्यां जगत्।
वा० यजु० ४०।१; ईश० १

'इस विश्वमें जो भी कुछ है, उस सबमें ईश व्याप रहा है।' यह इस मन्त्रका 'उत्तानार्थ' है। पर इसका 'रहस्य अर्थ' यहां देखना आवश्यक है। वह इस तरह देखा जाता है।

'ईश' कौन है? जो (ईष्टे इति ईट्) जो ईशन करता है, जो दूसरोंपर अधिकार चलाता है, जो दूसरोंपर शासन करता है, जो दुसरोंपर अपना प्रभुत्व प्रस्थापित करता है, जो दूसरोंको अपने आधीन करके रखता है वह 'ईश' कहलाता है। जिसके पास अपना निज ईशन सामर्थ्य है, जिसके पास राज्यशासन करनेकी अपनी निज शक्ति है वही ईश है। जिसके पास निजशासनका सामर्थ्य नहीं होगा, वह न तो 'ईश' बन सकेगा और किसीने उसको ईश बनाया तो भी वह उस स्थानपर टिक नहीं सकेगा।

'ईशा इदं सर्वं वास्यं' इसका रहस्य अर्थ ऊपरका विवरण ध्यानमें लेनेपर ऐसा होता है– "जिसके अन्दर राज्यका शासन करनेका निज सामर्थ्य होता है, वही इस जगत्पर राज्यशासन कर सकता है। अर्थात् जिसके अन्दर राज्यशासनका निज सामर्थ्य नहीं होता, उसके हाथमें राज्य आया तो भी वह उस राज्यको चला नहीं सकेगा और उस राज्यको वह अपने हाथोंमें टिका भी नहीं सकेगा।" यह इस वचनका रहस्यार्थ है।

अब हम ' वास्यं ' का अर्थ देखते हैं। ' वस्-निवासे ' और ' वस्-आच्छादने ' ये दो अर्थ इस ' वस् ' धातुके प्रसिद्ध हैं। ' रहना और आच्छादन करना ' ये दोनों अर्थ यहां लेकर देखिये कि इसका आशय क्या होता है। " ईशा इदं सर्वं वास्यं= " " जिसमें शासन करनेका निज सामर्थ्य है वही इस जगत्में रह सकता है और वही अपने निजसामर्थ्यसे उस राष्ट्रको घेर सकता है। " अर्थात् जिसमें राज्यशासन करनेका निजसामर्थ्य नहीं होगा, वह इस जगत्पर कदापि राज्य नहीं कर सकेगा। तथा वह अपने सामर्थ्यसे इस जगत्को अथवा इस जगत्के विभागको कदापि घेर भी नहीं सकेगा। इसी तरह ऐसा निर्बल शासक यहां टिकेगा भी नहीं। " रहनेके लिये और घेरनेके लिये निज सामर्थ्य चाहिये " यह इस मन्त्रका आशय है।

' ईशा वास्यं इदं सर्वं ' का रहस्य अर्थ यह है। इस अर्थको यौगिक अर्थ, गुह्य अर्थ अथवा रहस्य अर्थ कहा जाता है। गुह्य अर्थका अर्थ ' गुप्त अर्थ ' ऐसा भी है और गुहामें- ' बुद्धिमें रहनेवाला अर्थ ' ऐसा भी इसका भाव है।

बुद्धिके द्वारा मनन करनेसे जो भाव समझा जाता है, वह गुह्य अर्थ है। उत्तानार्थ सर्वसाधारणतया शब्दार्थका भाव बताता है और रहस्यार्थ विशेष गहरा स्थायी भाव बताता है। ' मन्त्रः मननात् ' ' मनन करनेसे मन्त्रका अर्थ समझमें आता है, ऐसा जो कहते हैं वह इस तरह यथार्थ है।

' ईश ' विश्वके राज्यका शासन करता है। इसमें विश्वशासन करनेके लिये जितना सामर्थ्य आवश्यक है उतना भरपूर सामर्थ्य उसमें है। इसीलिये वह संपूर्ण विश्वपर अपना शासन स्थापित करता है, विश्वपर वह अपना अधिकार चलाता है। वह सबसे अधिक सामर्थ्यवान्, वह सबसे अधिक ज्ञानी, वह सबसे अधिक कुशल तथा वह सबसे अधिक आयोजनकर्ता है। इससे अधिक सामर्थ्यवान् दूसरा कोई नहीं है, इसीलिये इस ' ईश ' का राज्यशासन सब विश्वपर अबाधित चल रहा है। यदि दूसरा अधिक सामर्थ्यवान् होता तो उस सामर्थ्यवानका ही राज्य होता। वैसा इससे भिन्न दूसरा कोई नहीं है।

ऋषियोंने जो ईश्वर मान लिया वह सबसे अधिक सामर्थ्यवान है ऐसा ही मान लिया है। इसी कारण वह सबके लिये आदर्श माननेयोग्य है। ' ईश, ईश्वर, महेश्वर, परमेश्वर ' ये शब्द ईश्वरके लिये प्रयुक्त होते हैं। पर ये छोटे बडे शासन विभागोंके अधिकारियोंके वाचक निःसन्देह हैं। ' ईश ' का अर्थ छोटा अधिकारी, ' ईश्वर ' अनेक ईशोंपर निरीक्षण करनेवाला अधिकारी, ' महेश्वर ' उससे अधिक ऊंचा और ' परमेश्वर ' सबसे श्रेष्ठ सामर्थ्यवान् और सर्वोपरि शासक है। यद्यपि इनके अर्थोंमें आज यह विवेक नहीं रहा है, तथापि जिस समय ये शब्द उत्पन्न हुए, उस समय इनके अर्थोंमें यह, इनसे ध्वनित होनेवाला भाव, स्पष्ट था।

इसी तरह " गण, गणेश, महागणपति, गणमण्डलाध्यक्ष " आदि शब्द भी विभिन्न अधिकारियोंके वाचक निःसंदेह हैं। इसी रीतिसे ' इन्द्र, उपेन्द्र, महेन्द्र ' ये पद भी विभिन्न अधिकारियोंके वाचक हैं। अर्थात् इनसे राज्यशासनके विभिन्न अधिकारी बोधित होते हैं।

विश्वके शासकका आदर्श

' ईशा वास्यं इदं सर्वं ' यह वचन अध्यात्मतत्त्वका वर्णन करनेवाला वचन है। पर यह राज्यशासनका भी भाव बताता है। अध्यात्मके आधारपर अपना राज्यशासन खडा रहा है ऐसा जो मानते हैं, वे इसी कारण मानते हैं। अध्यात्मशास्त्रमें गुह्यरीतिसे विश्वशासनका तत्त्व रखा गया है। इसी तरह " विश्वका शासक " पृथ्वीके ऊपरके छोटेसे राज्यशासकके लिये आदर्श होना भी स्वाभाविक ही है।

' ईशा वास्यं इदं सर्वं ' यह मन्त्र वाजसनेयी यजुर्वेदके ४० वें अध्यायका तथा ईश उपनिषद्का प्रथम मन्त्र है। इसी अध्यायमें ' ईश ' के वाचक ' आत्मा, तत् (ब्रह्म), अग्नि ' ये पद आगये हैं। ' आत्मा और ब्रह्म ' में अपनी निजशक्ति है और वही शक्ति विश्वभरमें सब प्रकारकी हलचल करती है यह आशय इन पदोंसे प्रकट होता है।

' आत्मा और ईश ' ये पद पुल्लिंगमें हैं, तथा ' तत् और ब्रह्म ' ये पद नपुंसकलिंगमें हैं। ' आत्मा और ईश ' ये पुरुष हैं इसलिये ये पुल्लिंगमें हैं। ये पुरुष हैं इसलिये ये ' प्रकृति ' रूपी अपनी पत्नीके साथ सम्बन्ध करके सब सृष्टीकी उत्पत्ति करते हैं, इस तरहका जो वर्णन है वह इस पुरुष भावका दर्शक है।

इसी तरह 'तत्' और ब्रह्म' ये पद नपुंसकलिंगमें हैं, इस कारण इनका वैसा सम्बन्ध प्रकृतिके साथ होनेकी संभावना नहीं है। यद्यपि 'ब्रह्म' सर्वोपरि परमश्रेष्ठ तत्त्व है, तथापि वह प्रकृतिके साथ वैसा सम्बन्ध नहीं रख सकता, इसलिये वह अकर्ता है ऐसा जो वर्णन है, वह भी इस तरह संगत होता है। राजकारणमें इसका विशेष महत्त्व है, देखिये—

अकर्ता आत्मा और प्रकृति सर्वकर्त्री

"ब्रह्म अकर्ता है और प्रकृति सर्व प्रपंचका व्यापार कर रही है" यह अध्यात्म तत्त्वज्ञानका सिद्धान्त है यह सब विद्वान जानते हैं। नपुंसक ब्रह्म और सतत प्रसव करनेवाली माया अथवा प्रकृति है। अर्थात् यहां ब्रह्ममें अकर्तृत्व और प्रकृतिका सर्वकर्तृत्व बताया है। ब्रह्मका अकर्तृत्व आत्मापर भी आरोपित करके लगाया गया है, इतना ही नहीं, पर वह ईश्वरपर भी आरोपित किया गया है। संपूर्ण अध्यात्मशास्त्र यही प्रतिपादन कर रहा है। ब्रह्म केवल है और सब संसारका कार्य प्रकृति कर रही है। यही भाव गीतामें भी स्पष्ट शब्दों द्वारा इसी तरह प्रकट किया है—

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
गीता० ९।१०

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
गीता० ३।२७

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति॥
गीता० १३।२९

'आत्मा अकर्ता है और प्रकृति यह सब प्रपञ्च करती और चलाती है।' यह इन सब वचनोंका भाव है। 'आत्मा' शब्दका पर्याय 'ईश' अथवा 'ईश्वर' है। यही विश्वके साम्राज्यका अध्यक्ष है। 'प्रकृति' शब्दका अर्थ राज्यशासन व्यवहारमें 'प्रजा' है। 'प्रकृति' का 'प्रजा' अर्थ सर्वत्र प्रसिद्ध भी है। इसका स्पष्टभाव यह हुआ कि राष्ट्राध्यक्ष केवल निरीक्षण करे और प्रजाजन अपने सब कार्य करें। राष्ट्रकी उन्नतिके सब कार्य प्रजाजन करें।

'प्रकृति' का अर्थ 'प्रजा' ऐसा है। 'राजा प्रकृतिरंजनात्' इस वचनमें 'प्रकृति' का अर्थ 'प्रजा' ऐसा ही है। यह अर्थ प्रसिद्ध है, इसलिये इसमें किसीको कुछ सन्देह होनेका संभव भी नहीं है। "आत्मा अकर्ता है और प्रकृति सर्व प्रपंच करनेवाली है" इस अध्यात्मके सिद्धान्तका राजकीय भाव स्पष्टरीतिसे ऐसा प्रतीत होता है कि "जानराज्यव्यवस्थामें राष्ट्रका अध्यक्ष स्वयं निरीक्षणको छोडकर दूसरा कुछ भी कार्य न करे और राष्ट्रोन्नतिके सब कार्य प्रजाजन-प्रजाजनोंके प्रतिनिधि-करते रहें।" लोकराज्यका यह मूल तत्त्व है।

'प्रकृति' का अर्थ 'प्र+कृति' विशेष प्रगतिकी कृति, विशेष प्रकारके कर्तव्य, ऐसा है और 'अध्यक्ष' (अधि+अक्ष) का अर्थ 'ऊपरसे देखनेवाला, निरीक्षण करनेवाला' ऐसा है। जो 'प्रकृति' है उसीने अपना प्रकर्ष करनेकी कृति करनी चाहिये। तथा जो 'अध्यक्ष' है, उसने 'कूटस्थ' रहकर प्रजाने की हुई कृतिका निरीक्षण करना चाहिये।

अध्यात्मके एक मुख्य सिद्धान्तका ऐसा यह जानराज्यके राजकीय क्षेत्रमें रूपान्तर है। यह योग्य है वा नहीं इसका विचार मनन करनेवाले विद्वान करें और देखें कि अध्यात्मका आधार राज्यव्यवहारमें किस तरह है।

'यत् देवा अकुर्वन्, तत् करवाणि।' यह आदर्शवाद याज्ञवल्क्यने शतपथ ब्राह्मणमें कहा है। यह इस तरह राजकारणके सिद्धान्त बता रहा है। यह मनन करनेवाले विद्वान् देखें।

प्रजापतिकी नियुक्ति

'प्रजापति' की नियुक्ति प्रजाओंके द्वारा की जाती थी, यह प्रजापतिकी कथाके द्वारा अन्य स्थानमें बताया जा चुका है। यह किस पद्धतिसे नियुक्ति होती थी, इसका वर्णन एक मन्त्र कर रहा है वह मन्त्र यहां देखिये—

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि
ता बभूव। ऋ० १०।१२१।१०

"जो (विश्वा जातानि परि बभूव) सबको घेर सके ऐसा (त्वत् अन्यः न) तेरेसे भिन्न दूसरा कोई नहीं है।" इसलिये हम सब तुझको प्रजापतिके पदके लिये स्वीकारते हैं। जो अपने प्रभावसे और सामर्थ्यसे सबको घेर सके, अपने सामर्थ्यसे सबको वश कर सके, सबपर शासन चला सके, वही प्रजापतिके पदके लिये योग्य है। यह एक सर्व

साधारण नियम है। मान लें कि हमको "राष्ट्रपति, मंत्री अथवा दूसरा कोई अधिकारी नियुक्त करना है," उस समय इसी नियमको ध्यानमें धारण करके नियुक्ति करनी चाहिये। "इस कार्यके लिये जो सबसे अधिक योग्य हो" उसीको उस पदके लिये पसंद करना योग्य है।

ग्रामाध्यक्ष नियुक्त करना हो अथवा राष्ट्राध्यक्ष नियुक्त करना हो, जिस कार्यको करनेके लिये नियुक्ति करनी है, उस कार्यको जो अपनी शक्तिसे उत्तम रीतिसे कर सकेगा, उसीको नियुक्त करना चाहिये, यह नियम इस मन्त्रसे यहां सिद्ध हुआ है। गुणोंकी पूर्णतासे नियुक्ति करनी चाहिये, न कि किसी अन्य गौण विचारसे। यह मेरा भाई है, यह संबंधी है, यह मित्र है, यह इस जातीका है ऐसे संकुचित भावसे किसीकी नियुक्ति नहीं करनी चाहिये। रंग, जाती, वंश तथा रक्तके सम्बन्धका विचार छोडकर जो सर्वतोपरि उस कार्यके करनेके लिये योग्य होगा, उसीकी नियुक्ति उस कार्यके लिये करनी चाहिये। ऋषियोंने प्रजापतिको नियुक्त किया अथवा उसको प्रजापति करके माना, वह इसीलिये माना कि उसके समान वहां दूसरा कोई उस स्थानके लिये योग्य नहीं था। यह मन्त्रका प्रतिपादन कितने विशाल राज्यव्यवस्थाके बडे सिद्धान्तको बता रहा है यह यहां देखनेयोग्य है।

ऋषियोंने प्रजापतिको तब प्रजापति करके माना कि जब उनके सामने उनके समान अथवा उससे अधिक दूसरा कोई नहीं था। अध्यात्मका सिद्धान्त विश्वराज्यका सिद्धान्त है, वह जिसके ध्यानमें आया, वह पृथ्वीपरके राज्यव्यवस्थाके लिये उस सिद्धान्तको बरत सकता है। विश्वशासकका आदर्श पृथ्वीपरके राज्यशासकके लिये है, वह इस तरह सिद्ध हुआ है।

वसिष्ठ आदि ऋषियोंने भारत राष्ट्रकी संघटना करके उस भरत राष्ट्रको उन्होंने विजयी और प्रभावशाली बनाया। ऐसे जो वर्णन हम देखते हैं, उनकी सत्यता इस मन्त्रके भावकी ओर ठीक तरह ध्यान देनेसे उत्तम रीतिसे ध्यानमें आ सकती है। "राष्ट्रका जो कार्य करना होगा, उस कार्यको करनेके लिये जो अधिकसे अधिक योग्य हो उसकी नियुक्ति करनी चाहिये," यही नियम राष्ट्रको प्रभावशाली बनानेके लिये पालन करनेयोग्य है। ऋषियोंने इस नियमका पालन करके ही अपने राष्ट्रको प्रभावी बनाया था।

मन्त्रका उपदेश इस तरह व्यवहारमें लाना योग्य है। इस तरहके ईश्वर विषयक वर्णन राज्यव्यवहारमें किस तरह उपयोगी होते हैं यह अब देखिये-

स पर्यगात् शुक्रं ··· शुद्धं अपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः। याथातथ्यतः
अर्थान् व्यदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः।

वा० यजु० ४०।८ ईश० ८

(१) **सः पर्यगात्**— वह ईश्वर सबको व्यापता या घेरता है,

(२) **शुक्रं**— वह वीर्यवान् है,

(३) **शुद्धं**— वह शुद्ध अर्थात् निर्दोष है,

(४) **अपापविद्धं**— वह पापसे विद्ध हुआ नहीं है, वह निष्पाप है,

(५) **कविः**— वह कवि-क्रान्तदर्शी-दूरदर्शी है,

(६) **मनीषी**— वह मनको अपने आधीन करनेवाला है,

(७) **परिभूः**— वह सबपर अपना प्रभाव रखता है, शत्रुका पूर्ण पराभव करता है, चारों ओरसे सबको घेरता है,

(८) **स्वयंभूः**— वह स्वयं अपनी शक्तिसे रहता है, उसको किसी दूसरेसे शक्ति प्राप्त करनेकी आवश्यकता नहीं है,

(९) **याथातथ्यतः शाश्वतीभ्यः समाभ्यः अर्थान् व्यदधात्**— वह सदा जो कार्य जैसा करना चाहिये वैसा ही ठीक तरह करता रहता है।

यह वर्णन ईश्वरका है, अर्थात् यह विश्वके महान् शासकका वर्णन है। इसीलिये यह वर्णन पृथिवीके ऊपरके छोटे छोटे राष्ट्रोंके शासकोंको आदर्श करके अपने सामने रखनेयोग्य है। यह आदर्श पृथ्वीके ऊपरके राज्यशासकोंने अपने सामने रखा, तो उनका राज्यशासन कैसा होगा, वह मननपूर्वक अब देखिये—

(१) **सः पर्यगात्**= (सः परितः सर्वतः अगात्)= वह सर्वत्र, सब स्थानोंमें जाता है, पहुंचता है, सबका ठीक तरह निरीक्षण करता है। इसी तरह राज्यशासकने राष्ट्रमें

सर्वत्र जाकर सब परिस्थितिका निरीक्षण उत्तम रीतिसे करना चाहिये। राष्ट्रपति एक स्थानपर बैठे और सब राज्य-शासन नीचले अधिकारियोंके अधीन ही हो जाय, यह योग्य नहीं है। सब परिस्थितिका निरीक्षण स्वयं मुख्य शासकको करना चाहिये।

(२) शुक्रं= वह वीर्यवान्, बलवान होना चाहिये। किसी भी स्थानपर निर्बलता नहीं रहनी चाहिये। जहां निर्बलता रहेगी वहींसे शत्रु अन्दर घुसेगा। इसलिये सर्वत्र वीर्यवान् संरक्षकोंके द्वारा सुरक्षाका उत्कृष्ट प्रबन्ध होना चाहिये।

(३) शुद्धं= राज्यशासन परिशुद्ध रहना चाहिये, निर्दोष रहना चाहिये। किसी भी स्थानपर दोष रहने देना योग्य नहीं है। शासनाधिकारी आचरणके परिशुद्ध होने चाहिये।

(४) अपापविद्धं= राज्यशासनमें किसी भी स्थानपर पाप नहीं होना चाहिये। सर्वत्र निर्दोष निष्पाप शासन-व्यवस्था होनी चाहिये। शासनाधिकारी निष्पाप रहने चाहिये, रिश्वतखोरी आदि दोष नहीं होने चाहिये।

(५) कविः (क्रान्तदर्शी)= राज्यशासक ज्ञानी होने चाहिये, वे दूरदर्शी हों। जो साधारण लोगोंको दीखता नहीं, वह भविष्यकालमें होनेवाला उनको स्पष्ट दीखना चाहिये। आज जो हम कर रहे हैं, उसका परिणाम भवि-ष्यमें क्या होगा, इसका ज्ञान यथार्थतः शासकोंको होना चाहिये।

(६) मनीषी= शासनाधिकारी मननशील हो, मनको स्वाधीन रखनेवाले हो, संयमी हों, मननपूर्वक शासन-कार्य करनेवाले हों।

(७) परिभूः (परितः भवति)= सर्वत्र संचार करके सब परिस्थितिका प्रत्यक्ष निरीक्षण करनेवाले, सर्वत्र पहुंच-कर अपना शासन सर्वत्र सुस्थिर रखनेवाले शासक हों। राष्ट्रके किसी स्थानपर शासन नहीं पहुंच रहा, वहां ढिलाई हो रही है, ऐसा कहीं भी न हो।

(८) स्वयंभूः (स्वयं एव प्रभवति)= स्वयं अपनी शक्तिसे रहनेवाला। राज्यशासन ऐसा हो कि जिसमें कभी दूसरे राष्ट्रसे शक्ति प्राप्त करनेकी आवश्यकता उत्पन्न न हो। अपनी निजशक्तिसे सब कार्य चल सके। अपनी शक्तिसे शत्रुको दूर कर सके, ऐसा बलवान राष्ट्र हो। वह अपनी शक्तिसे विराजे।

(९) याथातथ्यतः अर्थान् व्यदधात्= जो कार्य जैसा करना चाहिये वह कार्य ठीक वैसा ही सुयोग्य रीतिसे करें, ऐसे शासनाधिकारी हों। राज्यशासनाधिकारी प्रमाद-शील न हों। अपने कर्तव्यमें कदापि कोई प्रमाद न करें। निर्दोष राज्यशासन करनेवाले सब अधिकारी हों और सब अधिकारी प्रमाद न करते हुए उत्तम राज्यशासन करें।

इस मननसे पता लग सकता है कि, जो परमेश्वरका वर्णन है, वही उत्तम राज्यशासकका वर्णन है और उत्तम राज्यशासनका भी वही वर्णन है जिसमें कुछ भी हेरफेर करनेकी आवश्यकता नहीं। इतनी पूर्ण रीतिसे ईश्वरका वर्णन अच्छे राज्यशासनका स्वरूप प्रकट करता है। ईश्वरके वर्ण-नका ही यह अर्थ है कि वह सर्वोत्तम राज्यशासकका वर्णन ही है। ऋषियोंने परमेश्वरको विश्वका शासक मान लिया और विश्वशासकके रूपसे उसका वर्णन किया। जिसमें कुछ भी दोष नहीं, कुछ भी वैगुण्य नहीं, ऐसा जो राज्य-शासन है, वही परमेश्वरका राज्यशासन है। अतः वह मानवी राज्य संचालकोंके लिये आदर्शरूपसे स्वीकार करने-योग्य है।

मनुष्यके सामने ईश्वरका ही उत्तम आदर्श है। 'जीव' ने किसी न किसी समय 'शिव' बनना है। 'पुरुष' ने 'पुरुषोत्तम' बनना है। 'नर' ने 'नारायण' बनना है। मनुष्य इसी मार्गमें है। परमेश्वर पूर्ण है और जीवने कभी न कभी पूर्णत्व प्राप्त करना है। इसीलिये जीवके लिये सदा ही परमेश्वरका आदर्श है। इसी तरह विश्वका नियंता राष्ट्रके नियंताके सामने आदर्श मार्गदर्शक करके रहने-योग्य है। इसलिये विश्वके नियन्ताका वर्णन राज्यशासक देखे, उसका मनन करे और अपना राज्यशासन उसके शासनके समान निर्दोष बनानेका यत्न करे।

इस तरह मनन करनेवालेके लिये ईश्वरके वर्णनसे उत्तम निर्दोष राज्यशासन पद्धतिका ज्ञान हो सकता है। इसमें इतनी ही विभिन्नता होगी कि ईश्वरका शासन अमर्याद रहेगा और मानवका राज्य मर्यादित रहेगा। बाकी सब बातोंमें समानता रहेगी।

इसी तरह अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, सूर्य आदि देवताओंके वर्णनोंसे राज्यशासनके अनेकविध अधिकारियोंके कर्तव्योंका

बोध हो सकता है। इस सम्बन्धमें यह ध्यानमें यहां धारण करना योग्य है कि, ये सब देवताएं परमेश्वरके विश्वव्यापक राज्यशासनका कार्य करनेवाले परमेश्वरसे नियुक्त हुए शासनाधिकारी ही हैं।

विश्वशासनके ये अधिकारी जैसा विश्वशासनका कार्य करते हैं, वैसा ही कार्य पृथ्वीके ऊपरके राज्यके अधिकारी करें। इन विश्वराज्यके अधिकारियोंके पास जो कार्य हैं, उनको देखनेसे हमें पता लग सकता है कि, हमारे राष्ट्रके शासनाधिकारी कौनसे कार्य किस तरह करें। अब यहां हम परमेश्वरके विश्वशासनके अधिकारी कौन कौन हैं और उनके कार्य कौनसे हैं यह देखते हैं—

विश्वकी शासन व्यवस्था

ब्रह्म (ईश्वर, परमेश्वर) विश्वराज्याध्यक्ष, राष्ट्रपति, द्रष्टा।

माया (प्रकृति) सर्व कर्म करनेवाली प्रकृति, कार्यक्षम प्रजासंघ। माया=कौशल्यपूर्ण कार्य करनेवाला संघ।

१ ब्रह्म-विभागः

ब्रह्मणस्पतिः पुरोहित, वैश्वानर, (विश्वनेता)

बृहस्पतिः, उपाध्यायः ज्ञानं, संज्ञानं, वाक्, सरस्वती, अग्निः (अग्रणिः) भारती, सावित्री, मेधा।

२ क्षत्र-विभागः

इन्द्रः, उपेन्द्रः, विष्णुः, रुद्रः, मरुतः, यमः, पितरः (रक्षितारः) अर्यमा, मन्युः, रथः, रथांगानि, धनुः, शराः, दुन्दुभिः, वज्रं, अशनिः, क्षेत्रपतिः, प्रजापतिः, वास्तोष्पतिः, राजा, धाता, मित्रः, वरुणः, सविता, अर्कः, आदित्यः

३ आरोग्य-विभागः

अश्विनौ (चिकित्सकः, शल्यकर्मा) पूषा, ओषधयः, रक्षोहा, राजयक्ष्मघ्नं, सोमः, तनूनपात्, असुनीतिः, असुः, जीवः आत्मा।

४ उद्योग-विभागः

त्वष्टा, विश्वकर्मा, ऋभवः, मायाभेदाः।

५ कृषि-विभागः

कृषिः, भूमिः, पृथिवी, गौ, वृषभः, अश्वः, अजावयः, वाजिनः, सीता, आपः, नद्यः, पर्जन्यः, आत्राणः, सरमा, श्वा, पणयः।

६ गृहस्थ-विभागः

पुरुषः, स्त्री, दम्पती, पुत्रः, वीरः, वीरा, अन्नं, दानं, रात्री, दिनः, उषा।

इत्यादि देवताएं और उनके विभाग हैं। वास्तविक देवताएं और भी अधिक हैं। उन सब देवताओंके मंत्रोंका मनन करके राज्यव्यवस्थाके कई अनेक विभाग हो सकते हैं। इन सब देवताओंके मन्त्रोंका विचार करनेसे हमें राज्यशासनके कई विभागोंका तथा उन विभागोंके अधिकारियोंके कार्यक्षेत्रका ज्ञान होना संभव है। राज्यशासनके तथा उनके अधिकारियोंके नाना विभागोंके पृथक् पृथक् कर्तव्य कौनसे हैं, इसका ज्ञान भी इसीसे हो सकता है। ये विभाग राज्यशासनके ही विभाग हैं यह स्पष्ट ही है।

यज्ञका आडंबर

यज्ञके आडंबरके नीचे इनमें जो राजकीय बोध था वह ढंक गया है। अब संशोधकोंको आगे आकर इनकी खोज करके इनके अन्दर जो राज्यशासनके तत्व हैं उनको प्रसिद्ध करना चाहिये। संशोधकोंके द्वारा आज भी यह हो सकेगा।

एक एक देवताके मन्त्र पृथक् पृथक् अभ्यासके लिये लेने चाहिये और उस देवताका स्थान विश्वके साम्राज्यमें कौनसा है, यह इस अभ्याससे नियत करना चाहिये। इस अभ्यासमें पुराणोंमें जो इन देवताओंके वर्णन हैं उनका भी उपयोग हो सकता है। पर वह बडी सावधानीके साथ करना आवश्यक है।

इन्द्र और मरुत्

इस विषयके उदाहरणके लिये हम "इन्द्र और मरुतों" का विचार यहां करते हैं। वेदमंत्रोंमें इन्द्र और मरुत् शत्रुसे युद्ध करते हैं। ये दोनों देव शत्रुओंका पूर्ण रीतिसे निर्दालन और स्वपक्षीयोंका संरक्षण करते हैं। इन्द्र सेनापति है और मरुत् उसके सैनिक हैं। मरुतोंकी सेनाकी रचना अनुशासनसे बन्धी रहती है। सात सातोंकी एक पंक्ति और प्रत्येक पंक्तिके दोनों बाजुओंमें दोनों ओर दो पार्श्वरक्षक रहते हैं। ऐसी सात पंक्तियोंका एक गण होता है अर्थात् यह गण (९×७)=६३ सैनिकोंका होता है—

७ सैनिक प्रत्येक पंक्तिमें
+ २ पार्श्व रक्षक पंक्तिके दोनों ओर
९ एक पंक्तिमें कुल सैनिक
× ७ ऐसी सात पंक्तियाँ
६३ कुल सैनिकोंका एक गण।

६३×७=४४१ सैनिकोंका एक 'शर्ध' होता था और ४४१×७=३०८७ इतने सैनिकोंका एक 'व्रात' होता था। प्रत्येक गणपर एक अधिकारी, शर्धका एक अधिकारी और व्रातका एक अधिकारी होता था, इनके क्रमशः नाम गणपति, शर्धपति और व्रातपति ये होते थे। इस तरह यह सेना विभागोंकी रचना होती थी। इनके अन्दर अनेक प्रकारकी व्यूह रचना भी होती थी।

(१) पदाति, (२) रथी और (३) अश्वारोही ये इनमें भेद होते थे। (४) रथारोही भी होते थे। परन्तु सबकी संख्या ७।७ में ही विभक्त होती थी। सर्वत्र मरुतोंकी सेनामें ७।७ का ही अनुपात होता था। गण, शर्ध और व्रात ये नाम सैनिकोंकी संख्याके अनुसार होते थे।

मरुतोंकी यह सेनारचना देखकर अपने राष्ट्रकी सेनाकी वैसी रचना करनायोग्य है। छोटी बडी सेनाके अनुसार तथा विभागोंके अनुसार अधिकारियोंके नाम भी होते थे। गणपति, गणाध्यक्ष, गणमंडलाध्यक्ष, महागणपति आदि नाम छोटे बडे सेनाधिकारियोंके होते हैं। आर्तिहर, रोग-मोचक आदि नाम उनके कार्यके अनुसार सेनापथकोंके और उनके अधिकारियोंके होते थे।

सब सैनिकोंकी समानता

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास उद्भिदोऽमध्यमासो
महसा विवावृधुः। सुजातासो जनुषा पृश्नि-
मातरो दिवो मर्त्या आ नो अच्छा जिगातन॥

ऋ० ५।५९।६

"सब मरुत् सैनिक समान हैं, उनमें (अ-ज्येष्ठासः) कोई श्रेष्ठ नहीं, (अ-कनिष्ठासः) कोई कनिष्ठ नहीं और (अ-मध्यमासः) कोई मध्यम भी नहीं है। ये सैनिक (उद्+भिदः) अपनी शक्तिसे ऊपर उठते हैं। वे (महसा विवावृधुः) महत्त्वाकांक्षासे बढते हैं। ये (जनुषा सुजातासः) जन्मसे कुलीन, (पृश्नि-मातरः) ये मातृभूमिके भक्त हैं, ये (दिवः मर्याः) दिव्य मर्त्य हैं, ये हमारे पास आजाय।' इस तरह इनकी समानता वर्णन की है। ये सैनिक एक ही बडे मकानमें रहते हैं, इसलिये उनका वर्णन इस प्रकार किया है—

१ समोकसः (ऋ० १।६४।१०)= एक घरमें रहनेवाले,
२ उरुक्षयाः सगणाः (अथर्व० ७।७७।३)= एक बडे विस्तीर्ण मकानमें गणशः रहनेवाले,
३ सनीळाः मर्याः स्वश्वाः नरः (ऋ० ७।५६।१)= एक घरमें रहनेवाले उत्तम घुडसवार वीर।

यह मरुत् वीरोंका वर्णन है। जैसे यूरोपीयनोंके सैनिक बऱ्याकोंमें रहते हैं, वैसी ही इन मरुतोंकी यह रहनेकी रीति है ऐसा दीख रहा है।

मराठा शाहीमें तथा पेशवाओंके समयमें वेदपठनके लिये उत्तेजना मिलती थी। उस समय वेदको कंठस्थ रखनेवाले वैदिक ब्राह्मण सहस्रशः थे। पर उस समय वेद केवल पठनका ही विषय था और केवल यज्ञयागमें वेदमन्त्र बोले जाते थे। वेदके मन्त्रोंमें जो ज्ञान है वह व्यवहारमें लानेका विचार कोई उस समय करता नहीं था। इससे कितनी हानि हुई है, इसका विचार करके देखना चाहिये।

अनुशासनयुक्त सैन्यरचना

मरुतोंका वर्णन वेदमन्त्रोंमें है। मरुतोंके सैन्यकी रचना ठीक युरोपीयन सेनाकी शिस्तबद्ध अनुशासनशील सैन्य रचनाके समान थी। वेदपाठियोंको संस्कृतभाषा आती नहीं थी और शास्त्री, पण्डित वेदको कण्ठ करते नहीं थे। इसलिये वेदमें शिस्तबद्ध अनुशासनयुक्त सैनिकीय रचना है, इस बातका पता किसीको भी नहीं लगा और इस कारण वेदमें अनुशासनयुक्त सैन्य रचनाका उपदेश है, पर हम भारतीयोंकी सेना अनुशासनरहित रही और युरोपीयन यहां आये, उन्होंने यहां अनुशासनयुक्त सेनाकी रचना की, मरुतोंकी सेनाके समान अपनी सेना उन्होंने यहां बनायी और हमारा पराभव किया!!! यह अनुशासनयुक्त सेनारचनापद्धति यूरोपमें थी, वही उन्होंने यहाँ की और हमारा पराभव किया। पर ऋषियोंने अनुशासनयुक्त सेनाकी रचना करनेका आदेश वेद द्वारा दिया था। वह वेदमन्त्रोंमें ही रहा। व्यवहारमें नहीं आया!!!

❀

मरुतोंके सूक्त मुखसे बोलनेवाले यहां थे। उनको हम क्या बोल रहे हैं उनका ज्ञान नहीं था। वेदपाठको सुननेवालोंको हम क्या सुन रहे हैं इसका ज्ञान नहीं था। ज्ञान अपने पास होते हुए भी अज्ञानकी परम सीमामें हम लिपटे थे। यूरोपीयनोंने यहां आकर यहांके ही सैनिकोंकी रचना गटबद्धपद्धतिसे की, अनुशासनशील सैन्य यहांके लोगोंका उन्होंने बनाया और उन्होंने मरुतोंके सूक्त कंठस्थ रखनेवाली आर्यजातिका पूर्ण रीतिसे पराभव किया !!! इससे स्पष्टरीतिसे समझमें आसकता है कि, यद्यपि हम वेदको कण्ठ करते थे, पर वेदकी विद्याका ज्ञान हमारे पास नहीं था। वह वेदकी विद्या हमारे दैनंदिनीय व्यवहारमें लानी चाहिये यह बात किसीके भी ध्यानमें नहीं आई। हम और हमारा भारतराष्ट्र उस समय वेदविद्यासे इतनी दूर हो चुका था !!

इस तरहकी सैन्यरचना और राज्यशासन पद्धति वेदमें है इसका ज्ञान भी लोगोंको नहीं था। वेदमन्त्र कण्ठस्थ करनेके हैं, यज्ञ, पूजा अर्चा अथवा चर्चामें बोलनेके लिये ही वेदमन्त्र केवल हैं, व्यवहारके उपयोगी ज्ञान उनमें कुछ भी नहीं है। वेदमन्त्र श्रवणसे ही पाप दूर हो सकता है, ऐसा विचार उस समय प्रबल था। आज भी वेदमें हमारे दैनंदिनीय उपयोगका कुछ ज्ञान है, इसका ज्ञान जनताको नहीं है और विद्वानोंको भी नहीं है। इस कारण हमारी अपरिमित हानि हो चुकी है और हो रही है।

इस तरह शिस्तबद्ध अनुशासनशील सेना रचनाका वर्णन वेदमन्त्रोंमें है। यह वर्णन देखनेसे राज्यशासनके एक महत्वपूर्ण संरक्षणतन्त्रमेंसे एक महत्त्वके विभागकी उत्तम रचना वेदमें है इसका ज्ञान हो सकता है।

राष्ट्रके शासनमें संरक्षक मन्त्री, सेनापति और उत्तम शिक्षित गटबद्धशिस्तमें स्थित अनुशासनशील सैनिकोंका महत्त्वपूर्ण कार्य रहता है इस विषयमें किसीको भी संदेह नहीं होगा।

अनुशासनशील सैनिकोंके गण बनाना, उनकी रचना गणशः करना, वे एक बडे घरमें गणपद्धतिसे रहें, वे अपने शस्त्र और अस्त्र उत्तम तेजस्वी स्थितिमें सदा रखें, यह वेदके मरुत् देवताके मंत्र हमें सिखा रहे हैं। हम यह सीख रहे हैं या नहीं यह प्रश्न विचारणीय है।

कर्मकाण्डके लोगोंने इन्हीं मन्त्रोंका विनियोग मनमाना किया और इस कर्मकाण्डके जालसे बाहर जानेका प्रयत्न आजतक किसीने भी जैसा करना चाहिये था वैसा नहीं किया। इस कारण इस महत्त्वपूर्ण विभागकी ओर भारतीयोंका पूर्ण रीतिसे दुर्लक्ष्य हुआ। जो सेनारचनाकी विद्या हमारे प्राचीन पूर्वजोंने उत्तम रीतिसे सिद्ध की थी और जिसमें उन्होंने प्राविण्य भी प्राप्त किया था, वही विद्या आज हमारेमें रही नहीं ! इसमें आश्चर्यकी बात यह है कि, उसी वेदोक्त गणबद्ध सेनारचनाकी पद्धतिका अवलंबन करके यूरोपीयनोंने यहां आकर हमारा ही पूर्ण रीतिसे पराभव किया !!!

हमारे पासकी यह राष्ट्ररक्षणकी विद्या– यह सैनिकीय रचना करनेकी विद्या हमारे धर्मग्रन्थोंमें ही रही और केवल पठनमें ही रही ! इन मन्त्रोंके विषयमें हमारे अन्दर अभिमान तथा आदर भी था। परन्तु इस सैनिकीय विद्याको जानना, उस विद्याको व्यवहारमें लाना और इस विद्यासे सैनिकीय रचना करके अपने राष्ट्रको अधिक बलशाली बनाना इस विषयकी ओर किसीका भी ध्यान नहीं गया। आज भी इस वेदकी विद्याकी खोज करके उसमें जो महत्त्वके विषय हैं, उनको व्यवहारमें लानेकी ओर किसीका ध्यान नहीं है !!

सेनामें सैनिकोंकी भरती

सेनामें सैनिकोंकी भरती करनेके समय आगे दिया मन्त्र विशेष बोध दे रहा है—

ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः।

ऋ० १।१८।५

'जो सुन्दर दीखते हैं, विशाल शरीरके हैं, उत्तम शूर हैं और शत्रुका नाश करनेमें कुशल हैं' ऐसे पुरुषोंको सेनामें भरती करना योग्य है।

इस तरहके योग्य आदेश वेदमन्त्रोंमें हैं। ये सदा बोधप्रद हैं। 'इन्द्र और मरुत्' देवताओंके मन्त्र इस तरह हमें स्वराष्ट्रके संरक्षणके लिये करना चाहिये, इस बातके आदेश देते हैं। यह सब ज्ञान राज्यशासनके लिये सहायक नहीं है ऐसा कौन कह सकता है ? वास्तवमें यह ऋषिप्रणीत ज्ञान अत्यंत प्राचीन होनेपर भी आजके व्यवहारके लिये अत्यंत उपयोगी है।

आरोग्य और बलवर्धन

अश्विनौ देवताओंके मन्त्र रोगोंकी चिकित्सा, शल्यतंत्र, दीर्घायु प्राप्ति आदि विषयोंका ज्ञान देते हैं। राष्ट्रकी आयु

बढनी चाहिये, राष्ट्रमें रोगोंका प्रादुर्भाव नहीं होना चाहिये यह सब ज्ञान अश्विनौ देवताके मन्त्र दे रहे हैं। वृद्धोंको तरुण बनाना, टूटी हुई टांगके स्थानमें लोहेकी टांग लगाकर उस मनुष्यको चलने, घूमने योग्य बनाना, अन्धेको दृष्टी देना, दूध न देनेवाली गौको दुधारू बनाना, दुर्बलको हृष्टपुष्ट बनाना, परम दुर्बलको पुनः तरुण और प्रजोत्पादनमें समर्थ बनाना। इन सब कार्योंका उल्लेख अश्विनौ देवताके मन्त्रोंमें हम देख सकते हैं। आरोग्यमन्त्रीका यह कार्यालय दीखता है। राष्ट्रके संरक्षणके कार्यमें आरोग्य संरक्षणके कार्यका विशेष महत्त्व है।

आरोग्यपथकका कार्य

वेदमन्त्रोंसे ऐसा दीखता है कि एक तुग्र नामक राजा था। उसका पुत्र भुज्यु था। वह अपनी सेना लेकर परदेशमें युद्ध करनेके लिये गया था। वहां उसका पराभव हुआ और उसकी सेना वहां समुद्रमें डूबने और मरने लगी। इसकी खबर अश्विनौ देवताओंको मिली। इन्होंने अपने शुश्रूषापथकोंको तत्काल तैयार किया और विमानोंसे उनको वहां भेजा और मरनेवाले घायल सैनिकोंको विमानमें लेकर अपने राज्यमें लाकर रखा–

तुग्रो ह भुज्युं अश्विनोदमेघे रयिं न कश्चित् ममृवां अवाहाः। तमूहथुः नौभिरात्मन्वतीभिः अन्तरिक्षप्रुद्भिः अपोदकाभिः। ऋ० १।११६।३

'तुग्र राजाने अपने पुत्र भुज्युको समुद्रके पार विजय प्राप्त करनेके लिये भेजा। पर जैसा कोई मरनेवाला अपने धनकी आशा छोड देता है उस तरह उसकी अवस्था हो गयी। अर्थात् वहां भुज्युका पराभव हुआ। पश्चात् अश्विदेवोंने अन्तरिक्षमें संचार करनेवाले वायुयानोंमेंसे उन वीर सैनिकोंको वापस घर लाकर पहुंचा दिया।' तथा–

तिस्रः क्षपः त्रिरहातिव्रजद्भिः नासत्या भुज्युं ऊहथुः पतंगैः। समुद्रस्य धन्वन् आर्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षळश्वैः॥

ऋ० १।११६।४

'समुद्रके पार रेतीले स्थानसे भी परे गये हुए भुज्युको सेनाके साथ तीन दिन और तीन रात्रीतक सतत उडनेवाले पक्षियोंके समान आकारवाले विमानोंसे अश्विदेवोंने वापस लाकर उसके घर पहुंचा दिया।'

राष्ट्रके आरोग्यमंत्रीके वैमानिक आरोग्यपथकका यह कार्य है। ऐसे अनेक कार्य देवराष्ट्रके तथा आर्यराष्ट्रके रक्षणार्थ अश्विनीकुमार करते थे। यह हम वेदमन्त्रोंमें देखते हैं। यह कार्य राष्ट्रशासकोंका नहीं है, ऐसा कौन किस तरह कह सकते हैं?

नरमेधकी मूल कल्पना

अब हम एक महत्त्वपूर्ण विषयका विचार करना चाहते हैं। '**नरमेध**' का प्रकरण यजुर्वेदमें है। इस नरमेधमें १८४ देवताओंके उद्देश्यसे १८४ बलि दिये जाने चाहिये ऐसा बहुत लोग मानते हैं। इस अध्यायका बलिपरक ही अर्थ करनेका संप्रदाय बहुत दिनोंसे प्रचलित है। शतपथ ब्राह्मणमें स्पष्ट कहा है कि– "यदि मनुष्यका बलि दिया गया तो एक मनुष्य दूसरे मनुष्यको खाने लगेगा, इसलिये इस नरमेधमें मनुष्यका बलि नहीं करना चाहिये।" ऐसा स्पष्ट और असंदिग्ध रीतिसे कहा है, तथापि आजके विद्वान ऐसा मानते हैं कि नरमेधमें नरबलि दिया जाता था। पर नरमेधके जो दो अध्याय यजुर्वेद वाजसनेयी संहितामें और काण्व संहितामें हैं, उनका ध्यानपूर्वक और मननपूर्वक अध्ययन करनेकी ओर किसीका ध्यान नहीं जाता यह सचमुच अत्यंत ही आश्चर्य है!

पुरुष सूक्तका एक अध्याय है और दूसरे अध्यायमें बलियोंकी नामावली लिखी है। पुरुष सूक्तमें तो बलि देनेका नामतक नहीं है। अब इस बलिनामावलीके अध्यायमें क्या है सो हम कुछ बलियोंके वचन देकर उनका विचार करेंगे और देखेंगे कि इन वचनोंमें क्या कहा है। सभी वचनोंका यहां विचार नहीं करेंगे, नमूनेके लिये थोडेसे बलियोंके वचन यहां उद्धृत करते हैं और उन वचनोंके मननसे क्या सिद्ध होता है यह हम देखते हैं–

१ ब्रह्मणे ब्राह्मणं– ब्रह्मदेवताके लिये ब्राह्मण है। क्या यहां ब्रह्मदेवताकी प्रीतिके लिये ब्राह्मणका बलि दिया जावे, अथवा ज्ञानका प्रचार करनेके लिये ज्ञानी पुरुषको नियुक्त किया जावे? अथवा ज्ञान प्राप्त करनेके लिये ज्ञानी पुरुषको प्राप्त करें किंवा ज्ञानीके पास जावें? कौनसा अर्थ योग्य है। 'ब्रह्मणे ब्राह्मणं आलभेत' यहां 'आलभेत' यह क्रियापद है। इसके दो अर्थ है 'प्राप्त करना' और 'बलि देना अर्थात् वध करके देवताको समर्पण करना।'

कौनसा भाव यहां लेना चाहिये। ब्राह्मणके वधसे ब्रह्मदेवता संतुष्ट होगी अथवा ब्राह्मणकी सुरक्षासे ब्रह्मदेवता आनन्दित होगी ?

ब्रह्मदेवता ज्ञानकी देवता है, उस देवतामें निज ज्ञान है। जो ज्ञानी देवता है वह ज्ञानीके वधसे संतुष्ट होगी ऐसा मानना भी असंभवनीय है। ज्ञानप्रचारसे उसको आनन्द होगा और ज्ञानीकी सुरक्षासे ही वह प्रसन्न हो सकेगी यह तो निःसन्देह है। इसलिये 'ब्रह्मणे ब्राह्मणं आलभेत' का अर्थ 'ब्रह्मदेवताकी प्रसन्नताके लिये ब्राह्मणको-ज्ञानीको-प्राप्त करो' ज्ञानीको ज्ञान प्रचार करनेके लिये नियुक्त करो यह अर्थ सयुक्तिक दीखता है।

ब्रह्मदेवता ब्रह्मज्ञानीके वधसे सन्तुष्ट होगी ऐसा किस तरह माना जा सकता है ? ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मज्ञानके प्रचारके लिये अपना सर्वस्व अर्पण करे यह योग्य है, पर इसमें भी ब्रह्मज्ञानीका वध नहीं है, परन्तु जीवनसमर्पण है। इस विचारसे स्पष्ट होगा कि आजकल इस वचनका जो भाव समझा जाता है वह अशुद्ध है। तथा जो शुद्ध भाव है वह उत्तम है। इसका निर्णय हम एक ही वचनसे न करते हुए और भी वचन यहां लें और उनके अर्थ कैसे बनते हैं इसका मनन करें और उस मननका परिणाम क्या होता है वह देखें। अब दूसरा वचन देखिये-

२ **क्षत्राय राजन्यं**- क्षत्र देवताके लिये क्षत्रियका बलि दिया जाय वा (क्षत्राय-क्षत्+त्राय) दुःखोंसे संरक्षण करनेके लिये, इस शत्रुसे अपने राष्ट्रका रक्षण करनेके कार्यके लिये क्षत्रियको प्राप्त करें, या नियुक्त करें अथवा लगा दें। संरक्षणके कार्य करनेके लिये क्षत्रियको नियुक्त करें, अथवा संरक्षणके कार्यके लिये क्षत्रियको समर्पित करें अर्थात् क्षत्रियको ही संरक्षणका कार्य सोंप दें। राष्ट्रके क्षत्रिय राष्ट्रके संरक्षणके लिये समर्पित हों, राष्ट्रसंरक्षणके कार्यमें राष्ट्रके सब क्षत्रिय अपना जीवित सर्वस्व अर्पण करें। इस तरहका अर्पण यहां है, पर जैसा आज समझा जाता है वैसा यहां नहीं है।

राष्ट्रसंरक्षणके कार्य करनेके समय युद्ध करना पडे तो उस युद्धमें क्षत्रियोंका वध भी हो तो कोई आपत्ति नहीं। पर क्षात्रदेवताके लिये यज्ञमें क्षत्रियका बलि देना यह कल्पना भी असह्य है।

३ **धर्माय सभाचरं**- धर्मके लिये सभासदका, सभामें जानेवाले सदस्यका बलि दिया जाय ? अथवा विधानके नियम जाननेके लिये राष्ट्रसभाके सभासदको प्राप्त करें। राष्ट्रके विधानमें कौनसे नियम हैं, उनका आशय क्या है इसका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये राष्ट्रकी विधानसभाके सदस्यके पास जाना और उससे उस सम्बन्धका ज्ञान पूछना योग्य है। पर धर्मकी प्रसन्नताके लिये सभासदका बलि देना यह अज्ञानकी परमसीमा है। जहां इस तरह सभासदोंका बलि दिया जाय वहां राष्ट्रकार्यकी सभामें कौन जाय और धर्मसभा भी किस तरह बने ? वास्तवमें यह ठीक है कि धर्मके निर्णय करनेके लिये धर्मसभाके सदस्य आत्मसमर्पण करें, निर्णय करनेके कार्यको तत्परतासे करें, अपना मन इधर उधर होने न दें। अपना जीवन लगाकर सभाका कार्य उत्तमसे उत्तम जितना हो सकता है उतना करें।

४ **पवित्राय भिषजं**- पवित्र नामक देवताके लिये वैद्यका बलि दिया जाय अथवा पवित्रता-व्यक्तिमें तथा राष्ट्रमें करनेके लिये- वैद्य तत्परतासे लगे। व्यक्ति और राष्ट्रमें पवित्रता करनेके कार्यमें वैद्य अपने आपको लगा देवे, अपना जीवन ही इस पवित्रता करनेके कार्यमें समर्पित करे। पर आज ऐसा समझा जाता है कि पवित्रताके लिये वैद्यका बलि दिया जाय!

५ **संधये जारं**— संधिदेवताके लिये जारका बलि दिया जावे अथवा दो युध्यमान पक्षोंमें स्थायी सन्धि करनेके लिये वृद्ध मनुष्यकी नियुक्ति करें। यह वृद्ध मनुष्य अपने प्रदीर्घ अनुभवसे दोनों युध्यमान पक्षोंमें ऐसी स्थायी सन्धि करेगा कि इससे विपरीत भावना ही पुनः उत्पन्न न होगी। सन्धि करनेके लिये वृद्धको नियुक्त करना यह उत्तम व्यवहारकी सूचना है। यदि यहां जारका बलि माना जाय तो समाजमें जार चाहिये, समाजमें जार न रहा तो नरमेध ही नहीं होगा, ऐसी आपत्ति उत्पन्न होगी। जिस समाजमें जार नहीं होगा, वह समाज नरमेध कर ही नहीं सकेगा। ऐसी आपत्ति आती है इसलिये प्रचलित समझा जानेवाला अर्थ ठीक नहीं है। जारका बलि मिलनेसे सन्धिदेवता किस तरह सन्तुष्ट होगी, यह भी समझमें आना कठिन है ?

६ **पुष्टयै गोपालं, वीर्याय अविपालं, तेजसे अजपालं।**

पुष्टि, वीर्य और तेजनामक देवताओंके लिये गोरक्षक, मेंढीका रक्षक और बकरीका रक्षक जो होगा, उनके बलि देने, या अपने शरीरको पुष्ट करनेके लिये गोरक्षकको प्राप्त करना और उससे गौका दूध पीना और शरीरको हृष्टपुष्ट करना, तथा वीर्य बढानेके लिये मेंढियोंके रक्षकके पास जाकर उनका दूध पीना तथा तेजस्विता बढानेके लिये बकरीके रक्षकके पास जाना और बकरीका दूध पीना। यहां गोरक्षकका बलि देना इष्ट है अथवा गोरक्षकको प्राप्त करना इष्ट है इसका विचार करना चाहिये। इसी तरह बकरी और मेंढीके पालकका बलि देना योग्य है अथवा इनके पालकोंके पास जाना इष्ट है, इसका विचार करना चाहिये।

७ वनाय वनपं- वनदेवताके लिये वनके पालकका बलि देना या वनके संरक्षण करनेके लिये वनरक्षककी नियुक्ति करना? यहां यदि ऐसा भाव समझा जाय कि वनके संरक्षणके लिये वनका रक्षणकर्ता अपना सर्वस्व अर्पण करे तो वह अर्थ योग्य हो सकता है। पर वनदेवता रक्षणकर्ताके बलिसे प्रसन्न होगी ऐसा मानना असंभव है, पर इस समय श्रद्धालु लोग ऐसा ही समझ रहे हैं यह सचमुच आश्चर्यकी बात है।

८ योगाय योक्तारं— योगदेवताकी सन्तुष्टिके लिये योग जाननेवाले अथवा योग करनेवालेका बलि देना योग्य है अथवा योगसाधन सीखना हो तो योगविद्या जाननेवालेको प्राप्त करना योग्य है इसका विचार लोग करें। (योगाय) जोडनेके कार्य करनेके लिये (योक्तारं) अच्छी तरह जोडनेवालेको नियुक्त करना चाहिये।

९ क्षेमाय मोक्तारं- क्षेमदेवताके लिये मुक्त करनेवालेका बलि देना चाहिये, या कल्याण प्राप्त करनेके लिये दुःखसे मुक्त करनेवालेको प्राप्त करना चाहिये।

१० शुभे वपं- शुभनामक देवताके लिये नायीका बलि देना योग्य है, अथवा मुखकी शोभा बढानेके लिये नायीके पास जाकर हजामत करवाना योग्य है। नायीके पास जाकर दाढी करवानेसे मुख सुंदर दीखता है। आजकल नायीके पास लोग न जाते हुए स्वयं ही अपनी हजामत करते हैं। इसलिये इस समय वपनकर्ताके पास जानेकी आवश्यकता रही नहीं है। इस वचनका अर्थ कौनसा युक्तियुक्त है इसका विचार करके देखनेसे पता लगता है कि इस समय परंपरासे जो अर्थ माना जाता है वह युक्तियुक्त नहीं है।

११ रूपाय मणिकारं, वर्णाय हिरण्यकारं—

रूप और वर्ण देवताओंकी संतुष्टिके लिये सुनार और जेवर बनानेवालेका बली देना योग्य है अथवा अपनी सुंदरता बढानेके लिये सुनार तथा जेवर बनानेवालेको प्राप्त करना योग्य है? जेवर बनानेवालेसे जेवर लेकर धारण करनेसे शरीरका सौंदर्य बढता है। पर इनका बलि देनेसे किसका किस तरह लाभ हो सकता है?

१२ मायायै कर्मारं- कुशलताकी देवता माया है, इस मायाको प्रसन्न करनेके लिये कुशल कारीगरका बलि देना योग्य है अथवा कौशल्यके कार्य करनेके लिये उत्तम कारीगरके पास जाना योग्य है?

१३ अरण्याय दावपं, पर्वतेभ्यः किं पुरुषं, सानुभ्यो जम्भकं, गुहाभ्यः किरातं, नदीभ्यः पुञ्जिष्टं, सरोभ्यो धैवतं, तीर्थेभ्य आन्दं, विषमेभ्यो मैनालं।

अरण्य, पर्वत, पहाडोंकी उतराई, गुहा, नदी, तालाब, तीर्थ अर्थात् नदीमेंसे उतरकर पार हो जानेके स्थान, दुर्गम स्थान आदि स्थानोंके संरक्षणके लिये किरात, धैवत आदिकोंको नियुक्त करना यह वास्तविक अर्थ दीखता है, परन्तु इनका अर्थ इन देवताओंके लिये किरातादिकोंका बलि देना चाहिये ऐसा समझा जाता है यह आश्चर्यकी बात है!

१४ तुलायै वणिजं= तोलनेकी तागडी रूपदेवताके लिये बनियेका बलि देना चाहिये, या तोलनेके लिये बनिया तागडी बर्ते अथवा तोलनेके कार्यके लिये उत्तम वणिकको नियुक्त करना? कौनसा अर्थ युक्तिसे सयुक्तिक प्रतीत होता है?

१५ ईरायै कीनाशं= अन्नदेवताके लिये किसानका बलि देना अथवा अन्नके लिये किसानको प्राप्त करना? अथवा अन्न उत्पन्न करनेके लिये किसानको नियुक्त करना?

१६ जवाय अश्वपं= वेगदेवताके लिये घोडेका पालन करनेवालेका बलि देना अथवा वेगसे कोई कार्य करनेके लिये घुडसवारको नियुक्त करना?

१७ शरव्यायै इषुकारं, हेत्यै धनुष्कारं, कर्मणे ज्याकारं—

शस्त्रोंके लिये धनुष्य, बाण और धनुष्यकी डोरी आदि करनेवालोंके बलि देने चाहिये कि इन कारीगरोंको प्राप्त करना चाहिये और उनसे ये शस्त्र लेने चाहिये?

१८ भूत्यै जागरणं– ऐश्वर्यके लिये जागनेवालेका बलि देना चाहिये अथवा ऐश्वर्य प्राप्त करनेके लिये जागते हुए रक्षणका कार्य करनेवालेको नियुक्त करना चाहिये ?

१९ नृत्ताय वीणावादं, पाणिघ्नं, तुणवध्वं– नृत्यके लिये वीणा बजानेवाला, ताल धरनेवाला तथा तबला बजानेवाला जो होता है उसका बलि देना चाहिये अथवा नृत्यके समय इनको बुलाना चाहिये ?

२० महसे गणकं– महत्त्व प्राप्त करनेके लिये गणित-विद्या जाननेवालेका बलि देना योग्य है अथवा हिसाब, किताब ठीक रखनेके लिये गणित जाननेवालेको नियुक्त करना चाहिये ?

२१ यमाय यमसूं— नियम करनेके लिये नियम करनेमें जो प्रवीण है उसको नियुक्त करो। यम देवताके लिये नियमन करनेवालेका बलि देना अयुक्त है।

२२ वपुषे मानस्कृतं— शरीरके लिये प्रमाणबद्ध शरीरकी सुस्थिति करनेवालेको नियुक्त करो। शरीर सुडौल तथा प्रमाणबद्ध होना चाहिये, इसलिये जो शरीरको सुप्रमाणबद्ध कर सकता है, व्यायाम योगादि शिक्षा द्वारा शरीरको सुडौल बना सकता है उसको प्राप्त करो और उससे शिक्षा प्राप्त करके अपने शरीरको प्रमाणबद्ध हृष्टपुष्ट करो। शरीरको प्रमाणबद्ध करनेवालेका बलि देनेसे किसका हित हो सकेगा ?

२३ बलाग अनुचरं— बल बढानेके लिये अनुयायियोंको प्राप्त करो। अनुयायियोंसे, अनुकूल आचार व्यवहार करनेवालोंसे बल बढता है। अनुचरोंका बलि देनेसे क्या बनेगा ? अनुचर लाक्षणिक अर्थसे अपने जीवनका बलि अर्पण करते ही हैं। इस अर्थसे जो बलि है वह होगा ही। परन्तु देवताके उद्देश्यसे वध करनेका अर्थ सुसंगत नहीं हो सकता, यही यहां बताना है।

२४ पिशाचेभ्यो वि-दल-कारीं— पिशाचोंके लिये विशेष प्रकारकी दलकी रचना करनेवालेको नियुक्त करो। 'पिशाच' रक्त पीनेवाले क्रूरकर्मा दुष्ट लोगोंको कहते हैं (पिशितं रक्तं आचामति)। रुधिरप्रिय लोगोंके उपद्रवका शासन करनेके लिये विशेष प्रकारके सेनाविभागोंकी विशेष रचना करनेवाले अधिकारीको नियुक्त करो। वे इन क्रूर लोगोंको दूर करेंगे और समाजको सुरक्षित रखेंगे।

२५ यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीं— यातना देनेवाले दुष्टोंके दूर करनेके लिये नोकदार शस्त्र धारण करनेवाली सेनाको नियुक्त करो। चारों ओर कांटे जैसे कील होते हैं ऐसे कांटोंवाले शस्त्र धारण करनेवाले सैनिक इन दुष्ट डाकुओंको दूर करें। इस कार्यके लिये ऐसे शस्त्रवाले लोग रहें।

२६ अवस्कृत्यै वधाय उपमन्थितारम्— वारंवार हमला करके कष्ट देनेवाले दुष्टोंका वध करनेके लिये शत्रुका मन्थन करनेवाले वीरको नियुक्त करो। वह उनका मन्थन करेगा और नाश करेगा।

२७ द्वार्भ्यः स्रामं, गेहाय उपपतिं, भद्राय गृहपं– द्वारोंकी सुरक्षा करनेके लिये, घरकी रक्षा करनेके लिये तथा सबका कल्याण करनेके लिये गृहरक्षकको नियुक्त करो। गृहादिकी सुरक्षाके लिये रक्षक रखना योग्य है।

२८ सर्वेभ्यो लोकेभ्य उपसेक्तारम्— सब लोगोंके हितके लिये वृक्षादिकोंका उपसिंचन करनेवालेको नियुक्त करो। इससे वृक्षादि बढेंगे और फल फूल आदिकी वृद्धि होकर सब मानवोंका कल्याण होगा।

२९ श्रेयसे वित्तधं— कल्याणके लिये धनका धारण करनेवालेको नियुक्त करो। धनकोशका रक्षक नियुक्त करो जिससे सबका कल्याण होगा।

३० हसाय कारीं— हास्य आनन्द बढानेके लिये कारीगरोंको नियुक्त करो। कारीगर करीगरीके कार्य करके लोगोंका आनंद बढा सकते हैं।

३१ प्रियाय प्रियवादिनं— हितसाधन करनेके लिये प्रिय भाषण करनेवालेको नियुक्त करो। वह प्रिय भाषण करके शत्रुको भी मित्र बना देगा जिससे हित होगा।

इन मंत्रोंका स्पष्ट अर्थ निःसंदेह राज्यव्यवस्थाके प्रबंधका है। राज्यशासन चलानेके लिये ये नाना अधिकार क्षेत्रोंके ये नाना अधिकारी हैं। इनको उन देवताओंके उद्देश्यसे बलि समझना बडे प्रमादका विषय है।

बलिकी प्रथा

यहां कई कहेंगे कि ऐसे बलि देनेकी प्रथा कई देशों और कई जातियोंमें थी, इसलिये इस प्रथाके आधारसे ये बलि ही हैं। हम कई देशोंमें ऐसी प्रथा थी यह मानते

हैं। पर ऐसी प्रथा कई देशोंमें थी इस कारण वेद-मन्त्रोंका अर्थ वैसा करना चाहिये यह हेतु ठीक नहीं है। वेदमन्त्र बडे प्राचीन हैं और ये प्रथाएं अर्वाचीन हैं। हमारे ही देशमें किसी मन्त्रका विनियोग कर्मकांडीयोंने मन माना कैसा भी किया है, इससे हम उस मन्त्रका अर्थ बिगाडने लगे तो अर्थका अनर्थ होनेमें देरी नहीं लगेगी।

'उद्बुध्यस्व' इस मन्त्रका उपयोग 'बुध' देवताकी पूजाके लिये, 'शमग्नि' इस मन्त्रका उपयोग 'शनि' देवताकी पूजाके लिये करते हैं, इसलिये ये मन्त्र बुध और शनि देवताके हैं ऐसा मानना अयुक्त है। ऐसे भयंकर विपरीत उपयोग कर्मकांडीयोंने किये हैं यह सत्य है, परन्तु इन प्रमाणोंको मानकर वेदमन्त्रोंके अर्थ बदलना किसीको भी उचित नहीं है।

मन्त्रोंका सरल अर्थ करनेके साधन भाषा, कोश, व्याकरण, निरुक्त, अलंकार आदि हैं। इनसे अर्थका ज्ञान ठीक तरह हो सकता है और अर्थनिश्चय करनेके समय पूर्वापर सम्बन्ध भी देखना योग्य है। इतने साधनोंसे मन्त्रोंके अर्थ ठीक तरह हो सकते हैं। यह कोई कठिन बात नहीं है। इस प्रकार अर्थ होनेके पश्चात् उसका विनियोग देखना। वह अनुकूल हुआ तो ठीक है, पर यदि प्रतिकूल हुआ तो उस अर्थहीन विनियोगको दूर फेंकना और सरल होनेवाले अर्थका ग्रहण करना योग्य है।

कर्मकांडी लोगोंने जो विनियोग किये हैं उनमें सैकडा ९० विनियोग अशुद्ध हैं। मन्त्रके अर्थका और उसके विनियोगका वास्तविक दृष्टीसे कोई सम्बन्ध ही रहा नहीं है। कर्मके विधि पहले बन गये। पश्चात् मन्त्र उन कर्मोंमें बोलने चाहिये ऐसा आग्रह शुरू हुआ। इसलिये किसी तरह मन्त्रोंको घसीटकर कर्ममें लगाया गया है। इसलिये किसी विनियोगसे हम मन्त्रके अर्थका निर्णय नहीं कर सकते।

राज्यके अधिकारी

अस्तु। इस नरमेध प्रकरणमें १८४ बलि पृथक् पृथक् देवताओंके उद्देश्यसे लिखे हैं। याजकोंकी दृष्टिसे ये बलि ही हैं। परन्तु संशोधककी दृष्टिसे ये बलि हैं ऐसा दीखता नहीं है, परन्तु यह राज्यशासनमें आवश्यक अधिकार विभागका कार्य करनेवाले नाना अधिकारियोंकी यह नामावली है ऐसा स्पष्ट दीखता है। विभिन्न संरक्षण विभागोंपर विभिन्न जातिके कार्यकर्ताजनोंकी नियुक्ति किस तरह करना योग्य है, यह इस नामावलीमें स्पष्ट रीतिसे दिखाई देता है। आज ही हम १८४ अधिकारियोंका निर्णय नहीं कर सकते यह बात भिन्न है, क्योंकि परिभाषा अतिप्राचीन हुई है और कई अधिकारस्थानोंके अर्थ ठीक तरह जानना आज कठिनसा हुआ है। तथापि बहुतसे संज्ञाओंके अर्थ स्पष्ट समझमें आते हैं, इसलिये इनसे अन्योंका भी अर्थ हम अनुमान करके जान सकते हैं और कई वचनोंका अर्थ ठीक तरह न भी समझमें आया, तो भी उससे उनका बलिपरक ही अर्थ करना चाहिये ऐसा सिद्ध नहीं हो सकता।

उदाहरणके लिये देखिये कि 'वनाय वनपं' और 'अरण्याय दावपं' ये दो मन्त्र हैं। इनका अर्थ यह है कि 'वनका संरक्षण करनेके लिये एक वनरक्षक अधिकारी नियुक्त करना' तथा 'अरण्यका आगसे संरक्षण करनेके लिये एक अग्निरक्षक अधिकारी रखना।' इन मन्त्रोंके अर्थके विषयमें किसी तरह सन्देह होनेका कारण ही नहीं है।

इसी तरह 'ब्रह्मणे ब्राह्मणं' और 'क्षत्राय राजन्यं' इनके भी अर्थ "ज्ञानका प्रचार करनेके लिये ज्ञानीको तथा संरक्षणके कार्यको करनेके लिये क्षत्रियको नियुक्त करना" इनके इन अर्थोंके सम्बन्धमें भी किसी तरह किसीको सन्देह उत्पन्न होनेका कोई कारण नहीं है।

ये सब मन्त्रभाग यही बता रहे हैं कि नरमेधका यह सब प्रकरण मनुष्योंकी उन्नतिके लिये जो राज्यशासन चलाना है; उसमें किस कार्यके करनेके लिये किस तरहके अधिकारीकी नियुक्ति करना उचित है। अर्थात् यह सब नरमेध प्रकरण राज्यशासनका प्रकरण है। इसमें सन्देह नहीं है।

ब्राह्मणग्रन्थ, सूत्रग्रन्थ तथा इनके आधारपर रचे भाष्य सबके सब हमारे विरोधमें खडे हैं यह हमें पता है। पर संशोधकको इसकी भीति नहीं है।

हमारा कहना इतना ही है कि वेदके मन्त्र क्या बोलते हैं यह प्रथम देखो, वह अर्थ सबसे प्रथम मनमें धारण करो और पश्चात् बाकीके साक्षीदारोंकी साक्षीका विचार करो। वेदमन्त्रोंका अधिकार सबके ऊपर है और श्रेष्ठ है। इस

कारण जो मन्त्र बोलते हैं वह प्रमाण मुख्य है और उसकी अपेक्षासे अन्य प्रमाण गौण हैं।

संशोधकोंको उचित है कि वे सबसे प्रथम मन्त्र क्या बोलते हैं वह देखें और पश्चात् उसके सम्बन्धमें दूसरे क्या बोलते हैं इसका विचार करें। आधुनिक मतमतान्तरोंके अनुसार वेदमंत्रोंको घसीटना कदापि योग्य नहीं है।

इससे पूर्व ' **प्रजापतिकी दुहिता** ' की कथामें हमने देखा है कि ब्राह्मणकारोंने यह दुहिता ' द्यु उषा अथवा वाणी ' है ऐसा कहा है, परन्तु वेदमन्त्रोंने कहा है कि यह प्रजापतिकी दुहिता ' **ग्रामसभा और राष्ट्रसमिति** ' है। वेदमन्त्रोंमें दिया यह अर्थ है इसलिये अन्योंके दिये अर्थोंसे यह अर्थ अधिक प्रमाण मानने योग्य है। इस वेदमन्त्रोंक्त अर्थसे इस कथाका राज्यशासन विषयक भाव किस तरह होता है इसका विचार हमने अन्यत्र किया है। इससे सिद्ध हुआ है कि वेदमन्त्रसे किया अर्थ योग्य है और ब्राह्मणग्रन्थोक्त तथा पुराणोक्त अर्थ माननीय नहीं है। ब्राह्मण और सूत्रग्रन्थोंके अर्थ तथा विनियोग कैसे भी हों और कर्मकाण्डमें इनका तात्पर्य कुछ भी निकाला हो, तो भी उन सबके द्वारा वेदमन्त्रोंका अर्थ बदलना कदापि योग्य नहीं है। क्योंकि वेदमन्त्रका अर्थ स्थायीभाव बताता है वैसा भाव अन्य ग्रन्थ नहीं बताते, अन्य ग्रन्थोंमें सामयिक भाव है।

संशोधकोंको इस विरोधकी पर्वाह नहीं करनी चाहिये। तथा सब प्रकारके पूर्वग्रह दूर करके अपना संशोधनका कार्य चलाना चाहिये।

वेदमंत्रोंका अर्थ

वेदमन्त्रोंके अर्थ करनेकी विविध पद्धतियां बहुत प्राचीन कालसे प्रचलित हैं। आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक, ऐतिहासिक, नैरुक्त, याज्ञिक ऐसे अनेक दृष्टिकोण ये हैं। वेदमन्त्रोंका अर्थ करनेकी ये विभिन्न पद्धतियां निरुक्तकारके पूर्व समयसे प्रचलित हैं। इन अनेक पद्धतियोंमें याज्ञिक दृष्टिकोण भी एक है। पर यह याज्ञिक दृष्टिकोण अन्योंको मार नहीं सकता।

इन सब पद्धतियोंमेंसे याज्ञिक पद्धति इस समय वेदपर अपना आसन जमाकर बैठ गयी है और हमारे सामने संशोधकोंका विरोध करनेके लिये तैयार होकर रही है। यह याज्ञिक पद्धति कितनी भी प्रबल है ऐसा प्रतीत हुआ, तो भी, उसने किये मन्त्रोंके विनियोग मन्त्रके अर्थके अनुसार नहीं हैं, यह सिद्ध करनेके लिये बहुत परिश्रम करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

जैसे नवग्रहोंके मन्त्र कर्मकाण्डमें लिये हैं, वस्तुतः वे नवग्रहोंके नहीं हैं, उसी तरह यज्ञकर्मके बहुतसे मन्त्र ऐसे ही बनावटी विनियोगके हीं हैं देखिये—

१ **शर्मासि** (त्वं शर्म असि)= तुम्हारा स्वरूप कल्याणरूप है, तू सुखस्वरूप है। इस अर्थका मन्त्र चमडा झिडकनेके लिये बर्ता जाता है।

२ **स्वधिते मा एनं हिंसीः**- (हे शस्त्र ! तू इसकी हिंसा न कर) यह अहिंसा प्रतिपादक मन्त्र पशुवध करनेके लिये ही प्रयुक्त किया गया है। पशुका वध करके भी मन्त्रसामर्थ्यसे हिंसा नहीं होती ऐसा भी और बोला जाता है।

३ (सविता देवः) **त्वा इषे** (प्रार्पयतु)= (सविता देव तुझे अन्न प्राप्त करनेके लिये प्रेरित करे यह मन्त्र-शाखा काटनेके लिये बर्ता जाता है।

ऐसे सेकडों मन्त्र बताये जा सकते हैं कि जिनका विनियोग अर्थके साथ कोई किसी तरहका सम्बन्ध नहीं रखता है। वस्तुतः वेदमन्त्रोंका अर्थ स्पष्ट होता है। वेदमन्त्रका मुख्य अर्थ आध्यात्मिक है, इसलिये कहा है–

सर्वे वेदा यत् पदं आमनन्ति। कठ० उ० २।१५

' सब वेद एक आत्माका वर्णन करते हैं। ' यह नितान्त सत्य है। यह ' आत्मा ' ही ईश्वर है और ' ईश्वर ' है इसका अर्थ ' यह संपूर्ण विश्वका अध्यक्ष, संचालक, शासक अथवा राज्यसंचालक है। ' अर्थात् इसके वर्णनके जो जो मन्त्र हैं, वे सबके सब मन्त्र परमश्रेष्ठ राज्यशासकका वर्णन करनेवाले हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि हम जिस पद्धतिको देख रहे हैं वह पद्धति ही वेद प्रतिपादित पद्धति है तथा वही वेदके मुख्य अर्थको बतानेवाली है।

वेदोक्त कर्म

' **वेदोक्त कर्म** ' का अर्थ ' **वेदमन्त्रेण उक्तं कर्म** ' वेदमन्त्रने प्रतिपादन किया कर्म ऐसा यदि है, तब तो यह निःसन्देह ही है कि पूर्वस्थानमें दिये मन्त्रों द्वारा बलि आदिका भाव प्रकट नहीं होता। मन्त्रोंके अर्थसे जो सिद्ध

हो रहा है वह कुछ और है और आज जो माना जाता है वह उससे विभिन्न ही है। वेदके मन्त्रोंके अर्थसे जो सिद्ध नहीं होता वह भाव वेदमन्त्रोंपर लगाना योग्य नहीं है। वेदके मन्त्रका जो ठीक अर्थ है उसे देखकर उसको व्यवहारमें किस तरह ढालना चाहिये इस बातका विचार संशोधक करें।

'वेदमन्त्रः उक्तः यस्मिन् तत् वेदोक्तं कर्म' वेदमन्त्र जिस कर्ममें बोले जाते हैं वह वेदोक्त कर्म है, ऐसा यदि पक्ष कोई स्वीकार करें तो सभी कर्म जो आज धर्मके नामपर चालू हैं वे वेदोक्त कर्म बनेंगे। पर यदि हम ऐसा मानेंगे तो हमारे इस माननेसे ही सिद्ध होता है कि वस्तुतः यह कर्म वेदमें उक्त नहीं है।

वेद एक ही था

अतिप्राचीन कालमें वेद प्रारम्भमें एक ही था। 'एक एव पुरा वेदः' (श्रीमद्भागवत) प्राचीन समयमें एक ही वेद था। अध्ययनकी तथा यज्ञकी सुविधाके लिये वेदव्यासने एक वेदके चार वेद बनाये। वे आज चालू हैं। व्यासजीके पूर्वकालमें कैसा क्रम था उसका पता किसीको नहीं है। आजका जो मन्त्रक्रम है वह विषयवार नहीं है। आजका क्रम प्रायः मंत्रोंकी संख्याके अनुसार है, देखिये--

ऋग्वेद प्रथम मण्डल, मेधातिथि ऋषि

सूक्त	१२	से	१५	प्रत्येक सूक्तमें	१२	मन्त्र
,,	१६	से	१९	,,	९	,,
,,	२०			,,	८	,,
,,	२१			,,	६	,,

सव्य ऋषि

सूक्त	५१	से	५२	प्रत्येक सूक्तमें	११	मन्त्र
,,	५३	से	५४	,,	११	,,
,,	५५			,,	८	,,
,,	५६	से	५७	,,	६	,,

कुत्स ऋषि

सूक्त	९४			प्रत्येक सूक्तमें	१६	मन्त्र
,,	९५			,,	११	,,
,,	९६			,,	९	,,
,,	९७			,,	८	,,
,,	९८			,,	३	,,

यह ऋग्वेदकी व्यवस्था है। अथर्ववेदकी भी ऐसी ही व्यवस्था है देखिये-

काण्ड	१	में	४	मन्त्रोंके	बहुसंख्य	सूक्त हैं।
,,	२	में	५	,,	,,	,,
,,	३	,,	६	,,	,,	,,
,,	४	,,	७	,,	,,	,,
,,	५	,,	९	,,	,,	,,
,,	६	,,	३	,,	,,	,,

इसके नन्तर विभिन्न व्यवस्था दीखती है। यह मन्त्र संग्रह मन्त्रोंकी संख्याके अनुसार है, विषयके अनुसार नहीं है। इस कारण हमें आवश्यक है कि हम विषयवार मन्त्र संग्रह करके अर्थ जाननेका यत्न करें।

वैदिक राज्यशासन

हमारे प्रतिपादनका विषय "वैदिक राज्यशासन" है इसलिये वेद प्रतिपादित अन्यान्य विषयोंका विचार यहां हम नहीं करेंगे। जो साक्षात् राज्यशासन विषयके मन्त्र होंगे, अथवा जो परंपरया राज्यशासनके तत्त्वका प्रतिपादन करते होंगे, उनका ही विचार हम यहां कर सकते हैं।

यहां यज्ञके विषयमें कहनेका कारण ऐसा हुआ कि नरमेधके कई मन्त्र राज्यशासनके पृथक् पृथक् विभागोंके अधिकारियोंकी नियुक्तिके आदेश देनेवाले हैं, ऐसा स्पष्ट होते हुए भी, उनका दूसरा ही उपयोग करनेकी परिपाठी बहुत वर्षोंसे प्रचलित हुई है। इसलिये इस पद्धतिके सत्य वा असत्य होनेके सम्बन्धमें कुछ प्रमाण जनताके सामने रखनेकी आवश्यकता उत्पन्न हुई। इस कारण यह विषय यहां किंचित् विस्तारसे विचार करनेके लिये लिया।

ईश्वरका वर्णन

जो वेदमन्त्र ईश्वरका वर्णन करते हैं और जो ब्रह्म, आत्मा या परमात्माके वर्णन करनेके लिये हैं, वे सीधे ही राज्यशासनके आदेश दे रहे हैं। विश्वशासकका वर्णन राष्ट्रशासकके लिये आदर्श है इसमें किसीको सन्देह नहीं हो सकता।

इस वर्णनके अतिरिक्त इन्द्र, मरुत्, अग्नि, अश्विनौ आदि अनेक देवताओंके मन्त्र वेदोंमें हैं। वे भी विश्व साम्राज्यके अनेक अधिकारियोंके वर्णन करनेवाले हैं। इसलिये इन देवताओंके मन्त्र उस उस राज्यशासनके

विभागके अधिकारियोंके कर्तव्योंका बोध दे रहे हैं। अर्थात् ये अन्याय देवताओंके वर्णनके मन्त्र राज्यशासनके विविध अधिकारियोंके कर्तव्यका बोध कराते हैं।

जैसा देखिये- 'इन्द्र और मरुत्' के मन्त्र सेनापति और सैनिकोंके कर्तव्य बताते हैं। 'अश्विनौ' देवताके मन्त्र वैद्यकीय विभागके कर्तव्योंका बोध कराते हैं।

इस तरह विचार करनेसे वेदमन्त्रोंके वर्णनसे हमें संपूर्ण राज्यशासनकी पूर्ण कल्पना हो सकती है। ऋषियोंने जो देवताओंका वर्णन किया, वह उस उस स्थानके 'आदर्श शासनाधिकारी' के वर्णनके रूपमें किया। 'अग्नि' का वर्णन केवल 'आग' का वर्णन नहीं है और 'इन्द्र' का वर्णन ही केवल 'विद्युत्' का वर्णन नहीं है। पर यह वर्णन परमेश्वरके विश्वके साम्राज्यके प्रमुख सेनापतिका वर्णन इन्द्रके वर्णनके रूपसे किया है और पुरोहितका वर्णन अग्निके वर्णनके रूपसे किया है। इस विषयकी देवताओंकी नामावलि राज्यशासनमें उनके स्थान बताकर इसी व्याख्यानमें इससे पूर्व की है। उस नामावलिको देखनेसे किस देवतासे राज्यशासनके किस अधिकारीके क्षेत्रका बोध होता है इसका ज्ञान हो सकता है और इस तरह संपूर्ण राज्यव्यवस्थाका बोध होना संभव है।

संशोधन करनेवालोंके सामने अनेक कठिनाइयाँ आनेवाली हैं। उनका सामना धैर्यसे करना चाहिये। संशोधकको आवश्यक है कि वह अपने मनसे सब प्रकारके पूर्वग्रह दूर करे और अपना संशोधन चलावे। पूर्वके विद्वानोंने यह कहा है वा वह कहा है, वह सब वे देखें और विचारें, पर आंखें बन्द करके उसका अनुसरण न करें। अपनी शुद्ध दृष्टिसे निरीक्षण करें और जो अपनी दृष्टिसे सत्य प्रतीत होता हो, वह ऐसा है, ऐसा संशोधक असंदिग्ध रीतिसे कहे।

राज्यशासनके सम्बन्धमें वैसा प्रयत्न यहां किया गया है।

प्रश्न

१ ऋषियोंके राज्यशासनका आदर्श क्या था?
२ जिनके सामने ईश्वर ही आदर्श हो, उनका आचरण कैसा होगा?
३ आत्मा अकर्ता और प्रकृति सब कार्य करनेवाली है, इस अध्यात्म तत्त्वसे कौनसा राज्यपद्धति सिद्ध होती है।
४ ईश्वरके गुणोंका मनन करनेसे व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्रका कल्याण किस तरह हो सकेगा?
५ मरुतोंकी सैन्यरचना किस तरह थी?
६ नरमेधकी मूल कल्पना क्या थी और उसका भाव क्या बना?
७ क्या नरमेधमें मनुष्यका बलि दिया जाता था? शतपथ ब्राह्मणका इस विषयमें क्या कथन है?
८ वेदमंत्रोंके अर्थ कितनी विभिन्न पद्धतियोंसे होते थे?
९ कर्मोंमें जो मंत्रोंके विनियोग किये गये हैं क्या वे सबके सब अर्थानुकूल हैं?
१० वेदोक्त कर्म किस कर्मको कह सकते हैं?